International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(5): 97-99

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(5): 97-99
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-07-2016
Accepted: 22-08-2016

डॉ0 गीता परिहार
एसोसियेट प्रोफेसर, प्रभारी संस्कृत विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ0 गीता परिहार
एसोसियेट प्रोफेसर, प्रभारी संस्कृत विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण–चिन्तन

डॉ0 गीता परिहार

सारांश
वैदिक संस्कृत से अर्वाचीन संस्कृत साहित्य तक के कवियों का अपनी रचनाओं में प्राकृतिक वर्णन करने का उद्देश्य यही रहा है कि वर्तमान में मानव उनसे प्रेरित होकर अपने जीवन की सुरक्षा कर सके। वेदों के अतिरिक्त नाटक, महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य में अर्जुन, अशोक, कदली, इङ्. गुदी, कमल, कुटज, चन्दन, तिलक, पनस, तिनिश प्रियंगु, विल्व, लकुच, शिरीष आदि औषधियों का विस्तृत उल्लेख हैं, जिनमें से कुछ औषधियाँ वर्तमान में उपस्थित भी है। आज मानव को चाहिए कि वह संस्कृत साहित्य और आयुर्वेद का गहन अध्ययन कर पर्यावरण की उस अनुपम देन अर्थात् प्राकृतिक औषधियों का लाभ उठाये जिसके द्वारा वह स्वयं को रोगमुक्त व तनावमुक्त करने में समर्थ हो सकता है। यही कारण है कि पहले संतप्त मानव प्राकृतिक औषधियों एवं वनस्पतियों का श्रेष्ठ ज्ञाता होने के कारण रोगमुक्त होकर एक अद्भुत आनन्द को प्राप्त करता था।
यह सर्वविदित है कि दुनिया का कोई भी विज्ञान प्राकृतिक हवा, पानी का निर्माण नहीं कर सकता इसलिए प्रकृति प्रदत्त तथा मानव के अपने पुरूषार्थ से रचित पर्यावरण में सन्तुलन रखना आवश्यक है। आज पर्यावरण को दूषित होने से बचाने के लिये जनचेतना जाग्रत करके शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार व प्रसार द्वारा पर्यावरण के उन संरक्षित करने वाले अवयवों पर बल प्रदान किया जाये जिसके द्वारा पर्यावरण की पूर्ण सुरक्षा सम्भव होती है। इस समय वन कटाव को रोकने के प्रयास के साथ सरकार द्वारा वृक्षारोपण कार्यक्रम में उनके सहभागी बनकर अपने जीवन (पर्यावरण) की उस अमूल्य निधि को प्राप्त करे, जिसके ऊपर मानव जीवन आश्रित है।

कूटशब्दः संस्कृत, साहित्य, पर्यावरण–चिन्तन, वृक्षारोपण, जल

प्रस्तावना
मनुष्य जिस स्थान पर रहता है वहाँ की जल, वायु, मिट्टी तथा उस स्थान पर पाये जाने वाले जीवधारियों से उसका जीवन प्रभावित होता है। समस्त भौतिक एवं सामाजिक कारकों को जिनसे मानव जीवन प्रभावित होता है सामूहिक रूप से उसे पर्यावरण या वातावरण कहा जा सकता है।
पर्यावरण का सम्बन्ध मानव के उद्भव से ही प्रारम्भ हो गया था। कहा जाता है कि जब विधाता ने सृष्टि की रचना की थी तो इस सृष्टि में जीव–जन्तु तथा पर्यावरण का निर्माण किया। हमारे आस–पास का वातावरण ही पर्यावरण है। पर्यावरण का अर्थ है– चारों ओर का आवरण। मानवेतर जो कुछ हमें दृष्टिगोचर हो रहा है वह पर्यावरण के अन्तर्गत आता है। जिसे प्राकृतिक पर्यावरण की संज्ञा दी जाती है। पर्यावरण मानव के जीवन पर सीधा प्रभाव डालता है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही एक अन्य पर्यावरण तैयार हो गया है जो प्राकृतिक पर्यावरण को दूषित करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कुछ दशाएँ प्राकृतिक हैं जैसे– वायु, जल, भूमि, अग्नि, आकाश, वन, तापमान, खनिज पदार्थ इत्यादि। चिरकाल से मनुष्य के जीवन क्रम एवं संस्कृति का पर्यावरण से सम्बन्ध रहा है। इसलिए प्राचीन मानव को ज्ञान था, और उनको ध्यान में रखकर वह प्रकृति के प्रति समादृत भाव रखता था।
वैदिक साहित्य से लेकर अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की रचनाओं का अध्ययन करने के उपरान्त यह सिद्ध होता है कि संस्कृत साहित्य में पद्य और गद्य साहित्य का उदभव प्रायः प्रकृति की प्रेरणा से ही हुआ है। जिस समय से मानव जाति ने संसार में अपना अस्तित्व आरम्भ किया अथवा जगज्जननी वसुन्धरा के अंग में क्रीड़ा करना प्रारम्भ किया उस समय से ही शस्य श्यामला पृथ्वी पर दृष्टिगोचर होने वाले प्राकृतिक दृश्यों से संस्कृत साहित्य भी अत्यन्त प्रभावित हुआ है। संस्कृत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं, जिसमें प्राकृतिक दृश्यों का देवताओं के रूप में आह्वान किया गया है। ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् आदि ग्रन्थों में भी प्रकृति का वर्णन है, किन्तु कुछ गौण रूप

में। रामायण और महाभारत जो लौकिक साहित्य के सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य माने जाते हैं, जिनके अन्तर्गत प्रकृति का यर्थाथ रूप में चित्रण हुआ है। वाल्मीकि रामायण की रचना तो एक कारूणिक प्राकृतिक दृश्य से ही प्रारम्भ हुई। एक निषाद द्वारा क्रौंच मिथुन में से एक का वध कर दिये जाने पर दूसरे क्रौंच पक्षी के करूण क्रन्दन को सुनकर ही वाल्मीकि के अन्तस्थल का शोक श्लोकबद्ध होकर प्रस्फुटित हो पड़ा। श्लोक इस प्रकार है–

''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।''[1]

उनके इस श्लोकमयी वाणी को सुनकर स्वयं ब्रह्माजी ने उन्हें महाकाव्य रचना की प्रेरणा दी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृत कवियों की रचना का स्त्रोत सदैव से ही प्रकृति रही है।
केवल एक वाल्मीकि ही नहीं अपितु संस्कृत साहित्य के अश्वघोष, भारवि, माघ आदि महाकाव्यकारों ने भास, भवभूति, राजशेखर, मुरारि आदि नाटककारों, दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट आदि गद्य काव्यकारों ने अपनी रचनाओं में यथेष्ट रूप से प्राकृतिक वर्णनों का समावेश किया है। किसी ने पर्यावरण का सुकोमल और सुकुमार पक्ष प्रस्तुत किया है तो किसी ने इसका उद्दाम एवं वीभत्स रूप प्रस्तुत किया है। कालिदास जी ने प्रकृति की सुन्दरता को संजीवता देते हुए 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामक नाटक लिखा जो संस्कृत साहित्य में शुद्ध पर्यावरण की विशेषता को दर्शाता है। कालिदास ने अनेक स्थलों पर यह संकेत किया है कि प्रकृति ने जो– जो हमें दिया है उसका हमें पालन करना चाहिये और उसकी रक्षा करते हुए उसका सदोपयोग करना चाहिये।
प्रकृति मानव के लिए क्या–क्या सहन नहीं करती, इसका सजीव चित्रण यहाँ किया गया है–

स्वसुख निरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः,
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादस्तीवृमुष्णं,
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।।[2]

उर्पयुक्त श्लोक में राजा दुष्यन्त के माध्यम से कालिदास प्रकृति के विषय में यह कहना चाहते हैं कि पेड़–पौधे हमारे लिए लाभकारी ही होते हैं वह कभी भी हमें हानि नहीं पहुँचाते, उनमें त्याग व करूणा की भावना होती है किन्तु आज मानव समझ ही नहीं पा रहा है कि वन या पेड़–पौधे हमारे लिए कितने लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। आज वनों को नष्ट करने से पर्यावरण–सन्तुलन बिगड़ रहा है जिससे भूमि क्षरण प्रारम्भ हो जाता है। इससे मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ आ जाती है जिससे जान–माल की अत्यधिक हानि होती है, बाद में भयंकर रोग फैलते है।
संस्कृत साहित्य में रचनाकारों ने पर्यावरण की शुद्धता पर भी बल दिया है जैसा कि कालिदास जी ने लिखा है–

सुलभसलिललावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।[3]

अर्थात् (ये ग्रीष्म–ऋतु के) दिन ऐसे हैं जिनसे जल में (नदी, झील, बाबड़ी आदि में) डुबकी लगा–लगाकर स्नान करना मनोहर लगता है, गुलाब के फूलों के सम्पर्क में आई सुरभित वन की हवाएँ बहती हैं, पेड़ों की घनी छाया में सुगमता से नींद आ जाती है, तथा ये दिन परिणाम के समय (ढलते–ढलते सायंकाल तक) बड़े रमणीय हो जाते हैं।
उर्पयुक्त श्लोक में प्रकृति के सुन्दर व स्वच्छ पर्यावरण को दर्शाया है लेकिन आधुनिक युग में इससे विपरीत स्थिति दिखाई देती है मानव ने नदी आदि के जल को दूषित कर दिया है। आज मानव द्वारा वाहित मल से टाइफाइड आदि भयानक रोग फैल रहे हैं, बड़ी–बड़ी फैक्ट्रियों से निकलते तैलीय पदार्थ जैसे– पेट्रोल, इथालीन, तेल आदि से जलीय वनस्पति का विनाश हो रहा है, कीटाणु एवं कीटनाशक जैसे– डी0डी0टी0 व पी0सी0बी0 आदि दवाईयों से जलीय प्राणियों पर विषैला प्रभाव पड़ रहा है। जलीय प्राणियों के सेवन से ल्यूफीनिया व कैन्सर आदि घातक रोगों की संभावना बनी रहती है, हमें जल भी शुद्ध नहीं मिल रहा है और आज नदियों का जल न पीने योग्य है और न नहाने योग्य। लेकिन प्रकृति की कीमत कौन समझ पा रहा है? वृक्षों के कटाव को कौन रोकने का प्रयास कर रहा है? तथा नये पौधों को लगाने पर उनका संरक्षण कौन कर रहा है? कोई नहीं।
प्रकृति के संरक्षण के विषय में कालिदास जी ने शकुन्तला के माध्यम से हमें कुछ समझाने का प्रयास किया है–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[4]

अर्थात्–जो तुम सबको बिना जल पिलाये तुमसे पहले जल पीने की इच्छा तक नहीं करती, जो प्रसाधन प्रिय होने पर भी (अपने श्रृंगार के लिए) तुम्हारा पत्ता भी स्नेह के कारण नहीं तोड़ती, तुममें सबसे पहली बार उत्पन्न होने पर जो प्रसन्नता से उत्सव मनाया करती थी, वही यह (ममता, त्याग और सहृदयता की मूर्ति शकुन्तला) पति के घर जा रही है, आप सभी इसे जाने की अनुज्ञा दें।
उपर्युक्त श्लोक में प्रकृति संरक्षण की भावना निहित है और प्रकृति–प्रेम भी छलक रहा है। किन्तु यह वातावरण आज नहीं दिखाई देता। शकुन्तला अपने को सजाने के लिए एक पुष्प तक नहीं तोड़ती किन्तु आज मानव अपने स्वार्थ के लिये पूरा वन ही काटने पर लगा हुआ है तथा पर्यावरण को दूषित करने में लग रहा है। आज पेड़–पौधे तथा वन्य पशु–पक्षी के संरक्षण के लिये राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास किये जा रहे हैं। जैसे–राष्ट्रीय उद्यान, वन विभाग, सिंचाई विभाग आदि। ये विभाग पेड़–पौधों को काटने से रोकने का प्रयास करते हैं तथा जगह–जगह नये–नये पेड़–पौधे भी लगाते हैं लेकिन वे शकुन्तला के समान उनका पालन–पोषण नियमित रूप से नहीं करते। जिससे पर्यावरण दूषित होता रहता है।

मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्त्यूथो,
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः।।[5]

उपर्युक्त श्लोक में तपोवन में उपद्रव करने वाले हाथी को साक्षात् विघ्न के रूप में वर्णित किया हैं। वह तपोवन जो पर्यावरण को संरक्षित रखने का एक बहुत बड़ा स्थान माना जाता है। तपोवन भारतीय संस्कृति के प्रधान पीठ है। आध्यात्मिकता के आगार, नैतिकता के निकेतन, सात्विकता के शुभ सदन, त्याग की भावना को जागृत करने वाला भारतीय तपोवन हमारी आध्यात्मिक संस्कृति के कमनीय क्रीडा–स्थल है। जहाँ पाश्चात्य–संस्कृति भोग की भावना पर आश्रित है वहाँ हमारी संस्कृति त्याग की भावना पर प्रतिष्ठित है।
संस्कृत साहित्य संसार का सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण होने के कारण अपने अन्तर्गत पर्यावरण के अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रसंगों का समावेश करता है। मनुष्य का जन्म से मृत्यु तक पर्यावरण से अटूट रिश्ता रहा है क्योंकि आँख खुलते ही उसका पहला साक्षात्कार पर्यावरण से ही होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य के समस्त शिरोमणि कवियों के द्वारा अपने काव्य में प्रकृति के उस असीम गुण का व्याख्यान किया गया है कि किस प्रकार से आदि समय से आज तक प्रकृति मानव की सहचरी होने के साथ–साथ उसके जीवन को सुरक्षित करने वाली रही है। मानव के प्रति उसकी बहुमूल्य देन वनस्पति एवं औषधियाँ ही है, जिनकी

सहायता से वह रबर, ईधन, गोंद, लाख, कोयला तथा अन्य खनिज पदार्थ प्राप्त करता है क्योंकि औषधियाँ ही संतप्त मानव को रोगमुक्त कर एक अद्भुत आनन्द प्रदान करती है। इसका वर्णन संस्कृत के अमूल्य रत्नस्वरूप महाकाव्यों में कवियों की वाणी के माध्यम से दृष्टिगोचर होता रहा है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में विभिन्न औषधियों का वर्णन है। वन में उपलब्ध वृक्ष सदा से ही इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहे हैं और प्राचीनतम साहित्य (वेदों) में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है। वन में कुछ औषधियों वृक्षों के पत्तो, जड़ो, फलों अथवा पुष्पों से प्राप्त होती है। ऋग्वेद के अनुसार औषधियों के सेवन से रोग तथा उसकी जड़ तक का नाश हो जाता है। अथर्ववेद में कुछ सूक्त रोग, रोग–लक्षण चिकित्सा तथा जड़ी–बूटी का वर्णन करते हैं जिनका मैषज्य सूक्त में से वर्णन मिलता है।

प्राकृतिक औषधि का महत्व वैदिक काल से ही बहुत ऊँचा समझा जाता है। रामायण में औषधियों के विषय में विस्तृत उल्लेख किया गया है और युद्धकाण्ड के अन्तर्गत औषधि पर्वतानयन अध्याय है, जिनमें कैलाश पर्वत के आगे ऋषभ पर्वत को औषधि पर्वत कहा है और इसके अतिरिक्त अन्य औषधियों पर भी श्लोक के द्वारा प्रकाश डाला गया है–

तयोः शिखरयोर्मध्ये पृदीप्तमतुलप्रभम्
सर्वोषधियुतं वीर! द्रक्ष्यस्यौषधिपर्वतम्।।
तस्य वानरशार्दूल! चतस्रो मूर्ध्नि संभवाः।
द्रक्ष्यस्योषधयों दीप्ता दीपयन्तो दिशो दश।
मृतसंजीवर्नी चैव विशल्यकरणीमपि
सावर्ण्यकरणीं चैव संधानकरणी तथा।।
ताः सर्वाः हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि
आश्वासय हरीन् प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज।।[6]

वाल्मीकि रामायण में इन श्लोकों द्वारा स्पष्ट वर्णन मिलता है कि जिस समय औषधियों को लेकर हनुमान लंका में प्रविष्ट हुए तो उन औषधियों के घ्राणमात्र से ही राम सेना में मूर्च्छित और क्षत जन चैतन्यता को प्राप्त कर रोगमुक्त हो गये थे। चिकित्सा के क्षेत्र में मृतसंजीवनी विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी और संघानकरणी इन चार महौषधियों का वर्णन है किन्तु ये महौषधियाँ क्या है यह आज के युग में चिकित्सकों के लिए अनुसंधान का विषय बनी हुई है। जिसमें अभी तक सफलता नहीं प्राप्त हुई है।

वेदो में पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं। अर्थववेद निर्देश देता है कि पर्यावरण में मुख्यतः तीन तत्वों की महती भूमिका होती है– जल, वायु और वनस्पति। इनसे मिलकर ही पर्यावरण बनता है। यथोक्तम्–

त्रीणि छन्दांसि कवयो वियेतिरे,
पुरूरूपं दर्शत विश्वचक्षणम्
आपो वाता ओषधयः
तान्येकस्मिन भुवन आर्पितानि।।[7]

यजुर्वेद में द्यौ व पृथ्वी की रक्षा का स्पष्ट निर्देश दिया गया है। वह इन दोनों की पितृमातृ वद् रक्षा करने का निर्देश देता है–

पृथिवी माता, द्यौष्पिता।[8]
अवतां त्वा द्या वा पृथिवी अव त्वं द्या वा पृथिवी।[9]

आज सर्वाधिक जल प्रदूषण के कारण मानव जाति अनेक बीमारियों से ग्रसित हो रहा है जबकि ऋग्वेद में जल को एक औषधि रूप में वर्णन किया गया है। यथोक्तम–

अप्सु .....अन्तर्विश्वानि भेष जा।[10]

पर्यावरण संरक्षण में वनस्पति का अत्यन्त योगदान रहता है। वह हमें जीवनी शक्ति प्रदान करती है और प्रदूषण को नष्ट करती है जैसाकि ऐत0 ब्राह्मण में कहा गया है–

प्राणो वै वनस्पतिः।[11]
वीरुधो वैश्वदेवीः उग्राः पुरुजीवनीः।[11]

ऋग्वेद कहता है कि वृक्षारोपण प्रत्येक मानव को अवश्य करना चाहिए, वृक्ष प्रदूषण को दूर करते हैं, प्राण वायु (आक्सीजन) देते हैं तथा जल स्रोतों की भी रक्षा करते हैं जैसाकि उल्लेख किया गया है–

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं
निषूदधिध्वम् अखनन्त उत्सम्।[12]

शतपथ ब्राह्मण वृक्षों को शिव औषधि रूप में वर्णन करता है तथा यजुर्वेद रूद्र रूप में वृक्षों का वर्णन करता है यथोक्तम्–

ओषधयो वै पशुपतिः।[13]
नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः वनानां पतये नमः।
ओषधीनाम् पतये नमः।[14]

इस प्रकार हम कह सकते हैं वैदिक काल से लेकर अर्वाचीन संस्कृत साहित्य तक में प्रत्येक कवि पर्यावरण संरक्षण के प्रति सचेत व जागरूक दृष्टिगोचर हो रहा है।

अन्त में मैं यही कहूँगी की वर्तमान में यदि हम अपने पर्यावरण में संतुलन बनाये रखना चाहते हैं तो हमें आज भोगवादी, संस्कृति का परित्याग कर अपनी पुरातन त्याग की भावना पर प्रतिष्ठित संस्कृति को अपनाना होगा। जिसका सन्देश हजारों वर्ष पूर्व उपनिषद् ने दे दिया था–

ईशावास्यमिदं सर्व यत् किञ्च् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन मुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[15]

अर्थात् इस जगती तल पर जंगम तथा स्थावर–जितने भी जीव निवास करते हैं, उनमें अनुग्रह तथा निग्रह करने में समर्थ ईश्वर अन्तर्यामी रूप से वास करता है। अतः हम पृथ्वी तल पर पाये जाने वाले प्रत्येक जीव के प्रति भगवद्गीता के सर्वात्मवाद के सिद्धान्त को भी ध्यान में रखकर भौतिक सुखों का उपभोग करेंगे तो अवश्य ही हमारे पर्यावरण व मानव में पूर्ववत् सन्तुलन स्थापित होगा और यह भावना चरितार्थ होगी–

सर्वे सन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःख भाग्भवेत्।।[16]

सन्दर्भ

1. वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड द्वितीय सर्ग, 15 वॉ श्लोक।
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5/7।
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/3।
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/9।
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/29।
6. बाल्मीकि रामायण, युद्ध0 74 वॉ सर्ग श्लोक 31–33।
7. अर्थ0/18/1/17।
8. यजु0 2/10–11।
9. यजु0 2/9।
10. ऋग्वेद 1/23/20।
11. ऐत0 ब्राह्मण/2/4।
12. अथर्ववेद 8/7/4।
13. ऋग्वेद 6/48/17।
14. शतपथ ब्राह्मण 6/1/3/12।
15. यजु0 16/17–19।
16. ईशावास्योपनिषद प्रथम मन्त्र।